अनुवाद

हे अर्जुन! धूएँ से अग्नि के समान सभी कर्म दोष से ढके हैं, इसलिए दोषयुक्त होने पर भी स्वाभाविक कर्म को नहीं त्यागना चाहिए।।४८।।

तात्पर्य

बद्धावस्था में सबके सब कर्म त्रिगुणमयी प्रकृति से दूषित हैं। ब्राह्मण को भी कुछ यज्ञों में पशु-हिंसा करनी पड़ती है। ऐसे ही, क्षत्रिय चाहे कितना भी पुण्यात्मा क्यों न हो, परन्तु शत्रु से युद्ध करने को बाध्य है; वह इससे विमुख नहीं हो सकता। इसी प्रकार, पुण्यात्मा व्यापारी को व्यापार में बने रहने के लिए कभी-कभी लाभांश को छिपाना अथवा काला धंधा करना पड़ता है। ये सब परिस्थितिवश अपरिहार्य सा है। शूद्र दुष्ट स्वामी का आज्ञा-पालन करने को विवश है, चाहे वह न करने योग्य ही क्यों न हो। इन दोषों के रहते भी अपने कर्तव्य कर्म को करता रहे, क्योंकि वह स्वाभाविक है।

इस संदर्भ में एक उत्तम उदाहरण दिया गया है। अग्नि स्वयं शुद्ध है, फिर भी उसमें धूआँ होता है; परन्तु इससे अग्नि अशुद्ध नहीं हो जाती। उसे तब भी सब से शुद्ध समझा जाता है। यदि कोई अपने क्षत्रिय-कर्म को त्याग कर ब्राह्मण-कर्म करना चाहे, तो ऐसी कोई गारण्टी नहीं है कि ब्राह्मण के कार्य में कुछ भी अरुचिकर कर्तव्य नहीं होगा। विचार करने पर यह निर्णय निकल सकता है कि प्राकृत-जगत् में कोई भी मनुष्य अपरा प्रकृति (माया) के दोषों से पूर्णरूप में मुक्त नहीं हो सकता। इस दृष्टि से अग्नि और धूम्र का दृष्टान्त बड़ा उपयुक्त है। अग्नि का प्रयोग करते समय निकले धूएँ से शरीर के नेत्र आदि अंगों को कष्ट होता है; फिर भी अग्नि का उपयोग अपरिहार्य है। ऐसे ही, अपने स्वाभाविक कर्म को केवल इसलिए नहीं त्यागना चाहिए कि उनमें कुछ क्लेश है। अपितु, कृष्णभावनाभावित होकर कर्तव्य-कर्म के द्वारा भगवत्सेवा करने के लिए नित्य कृतसंकल्प रहना चाहिए। यही संसिद्धि की अवस्था है। जब कोई कर्तव्य-कर्म भगवत्प्रीति के लिए किया जाता है, तो उसके सम्पूर्ण दोषों की अपने-आप शुद्धि हो जाती है। इस प्रकार भक्तियोग के सम्बन्ध से जब कर्मफल शुद्ध हो जाता है, तो कर्ता अन्तरात्मा के दर्शन में सिद्ध हो जाता है। इसी का नाम स्वरूप-साक्षात्कार है।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति।।४९।।

असक्तबुद्धिः=आसक्तिरहित बुद्धि वाला; **सर्वत्र**=आत्मा के अतिरिक्त सब वस्तुओं में; **जितात्मा**=जीते हुए मन वाला; **विगतस्पृहः**=प्राकृत इच्छा से रहित; **नैष्कर्म्यसिद्धिम्**=नैष्कर्म सिद्धि को; **परमाम्**=परम; **संन्यासेन**=संन्यास द्वारा; **अधिगच्छति**=प्राप्त होता है।

अनुवाद

संन्यास का फल केवल आत्मसंयम करने, प्राकृत वस्तुओं की आसक्ति को